E-ISSN: 3048-6041 | Volume- 2, Issue- 2 | February 2025

# आधुनिक भाव बोध के संदर्भ और अमृत राय

**सुरेंद्र कुमार मिश्रा**
शोध-छात्र, विक्रमाजीत सिंह सनातन धर्म कॉलेज, कानपुर, उत्तर प्रदेश

**शोध सार -** संस्कृति रूप में आधुनिकता एक गतिशील विचार प्रणाली है जिसका श्रेय किसी एक दिशा और राष्ट्र को नहीं दिया जा सकता। सामान्य अर्थों में आधुनिकता को पश्चिमी सभ्यता का पर्याय मान लिया जाता है लेकिन यह आधुनिकता का अर्थ संकोच है जिसका आधार पश्चिमी उपनिवेशवाद है। भारतीय संदर्भ में राजनीतिक स्वतंत्रता के बाद भी दशकों तक सांस्कृतिक उपनिवेशन के तत्त्व उपस्थिति रहें। आज भी बहुत से लोगों के लिए आधुनिक भावबोध और कुछ नहीं पश्चिमी भावबोध ही है। अमृत राय प्रगतिशील विचारक है अपनी चिंतन और लेखन में वह सामाजिकता को एक बड़ा मूल्य स्वीकार करते हैं। उनके लेखन में साहित्य, समाज और लेखक के अंतसंबंधों पर गंभीर विचार दृष्टि प्राप्त होती है। आधुनिक भावबोध की रचना प्रक्रिया में उनका चिंतन बहुत महत्त्वपूर्ण है। वह नयेपन और क्रांति के नाम पर अराजकता और पश्चिमी कला आंदोलन की नकल से असहमत होते हुए उसकी कठोर आलोचना करते हैं।

**बीज शब्द -** आधुनिकता, रचना-प्रक्रिया, मूल्य बोध, सांस्कृतिक उपनिवेश, भूमंडलीकरण, मार्क्सवाद, अस्तित्ववाद, सामाजिक परिवेश, यथार्थवाद, पूंजीवाद

**मूल आलेख -** अमृत राय एक बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न उपन्यासकार, कहानीकार, जीवनी लेखक, श्रेष्ठ अनुवादक होने के साथ-साथ महत्त्वपूर्ण मार्क्सवादी आलोचक भी हैं। उनका प्रगतिशील मार्क्सवादी लेखन और चिंतन किसी साहित्यिक वाद की सीमा से बंधा हुआ नहीं है। वह मार्क्सवादी होते हुए भी वह मार्क्सवादी चिंतन की सीमाओं को स्वीकार करते हैं। एक सृजनशील संवेदनशील लेखक की दृष्टि हमेशा सार्थक विमर्श की ओर होती है। वे अपने चिंतन और लेखन के माध्यम से समय-समय पर जरूरी प्रश्न उठाते रहे हैं। नई समीक्षा, सह-चिंतन, विचारधारा और साहित्य, आधुनिक भाव बोध की संज्ञा उनकी प्रमुख आलोचनात्मक पुस्तकें हैं जिनमें वह मार्क्सवादी आलोचना की पद्धति, आलोचना शास्त्र और साहित्य सौंदर्य शास्त्र जैसे महत्त्वपूर्ण विषयों पर तर्क पूर्ण चिंतन करते हैं। आधुनिक भावबोध के प्रश्न पर उन्होंने अपनी पुस्तक 'आधुनिक भावबोध की संज्ञा' पर विस्तृत चिंतन किया है।

आधुनिक भावबोध के निर्माण में मार्क्सवाद और अस्तित्ववाद का प्रमुख योगदान है। अमृत राय का चिंतन आधुनिक युग की इन दो प्रमुख विचारधाराओं को एक-दूसरे के विपरीत और समांतर नहीं देखता। वह इन दोनों विचार दृष्टियों को एक-दूसरे का प्रेरक मानते हैं। कालक्रम की दृष्टि से कार्ल मार्क्स और सोरेन किर्केगार्द की पहली पुस्तक के प्रकाशन का समय भी लगभग एक सा है 19वीं सदी का पांचवा दशक। वे लिखते हैं,''मार्क्स और किर्केगार्द की दृष्टि में मौलिक अंतर है। मार्क्स की दृष्टि समष्टि को लेकर चलती है, किर्केगार्द की दृष्टि व्यक्ति पर है। इसीलिए मार्क्स जहाँ सामाजिक न्याय, वर्ग-संघर्ष, सर्वहारा के संगठन और जन-क्रांति की बात करता है, किर्केगार्द आधुनिक मशीन-युग के उस यांत्रिक जीवन की विभीषिका की बात करता है, जिसमें व्यक्ति अपना व्यक्तित्व खोकर मशीन का एक पुर्जा-मात्र हो गया है। मार्क्स मानव-जाति की बात करता है, किर्केगार्द मानव-व्यक्ति की।"1

इस पूंजीवादी यांत्रिक युग में मनुष्य की चेतना के निरंतर होते अवमूल्यन का सूत्र मार्क्स समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र में खोजता है। मार्क्सवाद की मुलभूत अवधारणा ही यह है कि मनुष्य के जीवन और उसकी चेतना का निर्धारण उसकी आर्थिक और सामजिक स्थिति तय करती है। "मार्क्स को व्यक्ति की ओर देखने का अवकाश नहीं है, क्योंकि उसने मान लिया है कि व्यक्ति की हर समस्या का, हर दुःख का, हर दुर्बलता का समाधान पूँजी पर आधारित समाज के अन्याय को मिटा देने में है और समाज ही व्यक्ति की अंतिम नियति है, उससे अलग व्यक्ति की कोई इयत्ता नहीं है।"2

अस्तित्ववादी दर्शन इस वृहद समाज की सबसे छोटी इकाई एक मानव की चेतना उसके अनुभवों के पक्ष में खड़ा होता है अस्तित्ववादी चिंतक उस स्तर, उस क्षण की अनुभूति की बात करता है जहाँ वह है, जहाँ से होकर वह गुजरा है। अस्तित्ववादियों के पास भविष्य में परिवर्तन और क्रांति की योजनाएं होती हैं और उनकी अपनी आस्थायें भी होती हैं मगर यहाँ इस तरह कुछ सरलीकरण और सामूहिक नहीं होता जिसका सुविधा अनुसार वर्गीकरण किया जा सके।

किर्केगार्द के दर्शन में हमें व्यक्ति के जीवन की नितांत निजी अनुभूतियों का बड़ा सशक्त अंकन मिलता है। पर जिस व्यक्ति की गहराइयों में वह प्रविष्ट होकर उसके भीतर के जीवन को अंकित करता है, वह सामान्य से भिन्न व्यक्ति अवश्य है। वह मात्र एक जैवकीय अस्तित्व नहीं है, जिसका जीवन यंत्रवत् जैविकीय वृत्तियों ही से संचालित है और न ही वह सचेतन अस्तित्व है जो समाज की सदस्यता ग्रहण करते हुए मात्र उसी का होकर रह जाता है-उसी से संचालित-उसी के प्रतिमानों से पूर्णतः निःशेष रूप से नियंत्रित । वह एक ऐसे 'अस्तित्व' की बात करता है जो पूर्णतः अपनी अस्मिता की खोज में रत है, और जिसने उस खोज के लिए अपनी दिशाओं का अपनी आन्तरिक प्रकृति के अनुरूप चयन भी किया है, जिसे, अन्य शब्दों में, किसी बाह्य निर्देशन की आवश्यकता नहीं है।3

अमृत राय के शब्दों में किर्केगार्द के लिए व्यक्ति ही एकमात्र सत्य है, सार्वभौम सत्य, और हर व्यक्ति अपने-आप में एक अलग ब्रह्माण्ड, नितान्त विशिष्ट अपने मानस-लोक में, जैसा कोई दूसरा व्यक्ति संसार में नहीं।4 अमृत राय इन दोनों ही विचार दृष्टियों के अलग-अलग स्तर और आयाम को स्वीकार करते हुए दोनों को एक दूसरे का पूरक मानते हैं। वह लिखते हैं "यद्यपि काफ़ी दूर तक दोनों (विचारधारा) एक-दूसरे की उल्टी दिखायी पड़ती है, मैं विश्वास करना चाहता हूँ कि अंततः दोनों एक-दूसरे की पूरक हैं। इस विश्वास का आधार यही है कि दोनों एक दिशा में देख रही हैं और जिस तरह आदमी की दोनों आँखों की दृष्टिरेखा एक बिंदु पर पहुँचकर मिल जाती है, वैसी ही स्थिति इन दोनों दृष्टियों की है, जो एक उसी 'आदमी' पर निबद्ध हैं।"5

आधुनिक भाव बोध को स्पष्ट करते हुए अमृत राय लिखते हैं " जीवन के आकलन से ही यह 'ऐब्सर्ड-बोध' बनता है। जहाँ इतना कुछ उल्टा-पुल्टा, बेतुका, बेसिरपैर है, वहाँ शायद इसी तरह सिर के बल खड़े होकर उसे ठीक-ठीक देखा और समझा जा सकता हो। इसी की एक शाखा वह है, जहाँ मनुष्य अपनी तर्कबुद्धि की व्यर्थता के बोध से अ-तर्कबुद्धि या 'इर्रेशनल' की ओर जाता है और सचेतन से अधिक महत्व अचेतन और उपचेतन मन का हो जाता है।

इन्हीं सब व्यर्थताओं और विभीषिकाओं के बीच होकर, उनका बोझ मन पर ढोते हुए, पुरानी आस्थाओं को खोकर और नयी किसी आस्था के अभाव में जो एक भावबोध बनता है, घोर निराशा और अविश्वास जिसका आवश्यक तत्व है, शायद उसी को आधुनिक भावबोध की संज्ञा दी जाती है।"6

इस यांत्रिक युग में आधुनिक भावबोध का निर्माण किन-किन परिस्थितियों में होता है पुराने मजदूर जीवन से यह औद्योगीकरण का श्रमिक जीवन कितना भिन्न है इसको स्पष्ट करते हुए अज्ञेय अपने लेख 'संस्कृति और परिस्थिति' में लिखते हैं, "पुराना दस्तकार निरक्षर होकर भी शिक्षित और संस्कृत भी होता था आज का मजदूर जासूसी किस्से और सिनेमा पत्र पढ़कर भी घोर अशिक्षित है उसकी जीवन की शिक्षा एक अकेली अर्थहीन यांत्रिक क्रिया तक सीमित है... (इस युग में) जीना और जीविका कमाना साथ-साथ नहीं चलते परस्पर विरोधी होकर चलते हैं। काम का समय पूरा होने पर घंटा बजाने पर ही उसे अपने को मानव समझने का अधिकार मिलता है और वह जीने का यत्न कर सकता है उसे(मजदूर को) फुर्सत मिलती है वह अपने को खाली पता है और एकाएक किसी वस्तु के लिए तड़प उठता है जिससे वह खालिस मिट जाए, वह अपने को 'तृप्त' मान सके, स्थगित जीवन से होने वाली क्षति पूर सके।"7

यांत्रिक युग में कारखाने से मुक्त हुए समय के बाद भी अवकाश नहीं होता। महानगरों में हर जगह भीड़ है, हर तरफ शोर है, कल कारखाने का शोर, बस की भीड़, रेल की भीड़ , श्रमिक एक छोटी कोठरी में रहता है। एक लोग के रहने

की जगह में दस-दस लोग रहते हैं। ऐसे में श्रमिक को अपने बारे में सोचने का ना अवकाश है, ना स्थान। ' मनोविनोद के दो ही साधन उसके पास बन रहते हैं, या तीन। कच्ची पक्की शराब, ताड़ी, कुछ भी पीकर धुत हो जाना, नाच-गाने, मारकाट, कसी चोलियों और अधनंगी छातियों से भरपूर कोई उत्तेजक फ़िल्म देख लेना और अपनी औरत के साथ सो रहना, कैसे भी, कहीं भी। यह आदमी का नहीं, सच्चे अर्थों में कीड़ों-मकोड़ों का 'जीवन है- और आधुनिक युग की यांत्रिक सभ्यता में आदमी का यह जो रूपांतर होता है, शायद, इसी की कहानी काफ्का ने अपनी 'मेटामॉर्फोसिस' में कही है। मशीन ने आदमी को जीत लिया है। जहाँ मशीन को आदमी का गुलाम होना चाहिए था, वहाँ आदमी मशीन का गुलाम हो गया है।'8

ऐसी स्थिति में संस्कृति, समाज, शब्द, स्मृति, मानवीय संबंध और जीवन मूल्यों के प्रत्येक स्तर पर संवेदना और आत्मीयता का ह्रास हुआ है। इस पूंजीवादी यांत्रिक तंत्र में फंसा जीवन अपने जीवन मूल्यों का निर्धारण क्या ही करेगा? सच तो यह है कि यह व्यवस्था जनता के उस बोध को ही नष्ट कर देती है जो अपने लिए क्या अच्छा है, क्या बुरा है का चुनाव कर सके। समाज में जिन थोड़े बहुत लोगों के पास समझ और विवेक शेष रह भी जाता है वह अल्पसंख्यक हैं, उनके पास अभिव्यक्ति के विकल्प बहुत कम और खतरे बहुत अधिक हैं। यही कारण है कि इस पूंजीवादी व्यवस्था में सामाजिक और नैतिक दृष्टि पर बहुत अधिक विचार करना मूर्खता और अपने समय की बर्बादी समझा जाता है।

आज लोगों के जीवन में अगर कुछ बहुतायत में है तो वह है अभावों की एक लंबी श्रृंखला और अन्याय की अनेक स्मृतियां। 'लोग हँसना भूल गये हैं और जब हँसते भी हैं तो लगता है कि जैसे खुद को मुँह चिढ़ा रहे हों या अपना सामाजिक दायित्व निभा रहे हों, क्योंकि वह हँसी भीतर की खुशी में से नहीं फूटती बल्कि शायद सिर्फ एक मुखौटा है।'9 अकारण नहीं हमारे समय में कॉमेडी का स्तर इतना गिर गया है कि बहुसंख्यक समाज अश्लीलता और स्त्री यौनिकता से जुड़े शब्दों को आत्मविश्वास के साथ मनोरंजन के लिए प्रयोग करता है।

नए लेखक विशेषकर नई कहानी के लेखकों जो आधुनिक भावबोध को प्रचलित फैशन की तरह अपने लेखन में आरोपित करते हैं। उनको लक्ष्य करते हुए अमृत राय कहते हैं, "आधुनिक-भावबोध भी यहाँ आकर एक पाखंड बन गया ! ऐसी बात न होती, तो इस आधुनिक भावबोध के संदर्भ में भी आज स्थिति कुछ और होती, मध्ययुगीन भारत का अपने ढंग से कुछ नया संस्कार किया जा सकता या अगर वह भी नही तो कम-से-कम इस हास्यास्पद स्थिति से तो मुक्ति मिल ही जाती कि हमारा 'आधुनिकताभिलाषी' अपने देश-काल से नितांत उपराम होकर, आवाँ-गार्द बनने की धुन में सागर-बिलासपुर या बलिया-गोरखपुर जैसी जगहों से निकलकर, बीच में कहीं पड़ाव न करता हुआ, मनसा सीधे पेरिस और न्यूयार्क पहुँच जाता है.."10

अमृत राय विचारों से मार्क्सवादी हैं लेकिन उनकी यह विचार दृष्टि किसी भी प्रकार की अराजकता का समर्थन नहीं करती। क्रांति, विद्रोह और यथार्थ चित्रण के नाम पर उनको अराजकता और अश्लीलता स्वीकार नहीं। एक लेखक के रूप में वह यह स्वीकार करते हैं, क्रांतिकारी समाजवादी लेखन के भी अपने नैतिक मूल्य होते हैं। यशपाल जो स्वयं एक मार्क्सवादी लेखक के रूप में जाने जाते हैं उनकी कहानियों की समीक्षा करते हुए अमृत राय लिखते हैं – यशपाल की कहानियों में आये यौन विवरण और कुछ नहीं उस घृणित साम्राज्यवादी दुष्प्रचार का साथ देती है जो पूंजीवादी वर्ग समाजवादी व्यवस्था में स्त्री जीवन को समाजीकरण के रूप में आरोपित करता है। सदियों तक साम्राज्यवादी सामंतवादी शक्तियों ने स्त्री का अपना कोई व्यक्तित्व ना मानते हुए, उसे एक वस्तु और धन के रूप में स्वीकार किया। वही समाजवाद के विरोध में यह प्रचार करते हैं कि समाजवाद में स्त्री का भी समाजीकरण होगा। अमृत राय लिखते हैं "यह समाजवादी नैतिकता के खिलाफ घृणिततम साम्राज्यवादी अपप्रचार है जो तमाम साम्राज्यवादी पत्र और पुस्तकें

हजार कंठों से पूरे वक्त करते रहते हैं और हमें हैरत होती है कि कैसे यशपाल, जो मार्क्सवादी हैं, उनका सुर और इस साम्राज्यवादी प्रोपगेंडा का सुर इस सवाल पर एक हो जाता है !"11

इस अराजकता पूर्ण चित्रण को अमृत राय पूरी तरह खारिज करते हैं वह इसे न विद्रोह मानते हैं, ना आधुनिक मानते हैं और ना प्रगतिशील मानते हैं। उनका मत है 'जिस तरह से अराजकतावाद, अनार्किर्कज्म, सामाजिक शक्तियों, वर्ग-शक्तियों का लेखा-जोखा न रखने के कारण अवैज्ञानिक होने के कारण, अंततः पूँजीवाद को खतम नहीं करता उल्टे उसे मदद पहुंचाता है, उसी तरह पूँजीवादी यौन नैतिकता के खिलाफ यशपाल का अराजकतापूर्ण विद्रोह' पूंजीवादी यौन नैतिकता को खत्म नहीं करता उल्टे उसे मदद पहुँचाता है,'स्त्री को पुरुष का गुलाम बनाये रखनेवाले के रूप में, स्त्री को सन्तानोत्पत्ति का केवल एक साधन बनाये रखनेवाले के रूप में, स्त्री को पुरुष की वासना का एक निरा चारा बनाये रखनेवाले के रूप में, यही पूँजीवादी यौन नैतिकता का बुनियादी सिद्धान्त है ।12

नई कहानी, अकहानी आंदोलन के रचनाकारों से असहमत होते हुए अमृत राय कहानी में सहजता को बल देते हैं और उसे कहानी कला का सबसे महत्वपूर्ण तत्त्व मानते है। 'नई कहानी के आंदोलन की उपलब्धियों का लेखा-जोखा इतिहास अपने समय में निश्चय ही करेगा लेकिन इतना तो साफ है की नई कहानी की खोज में सहज कहानी खो गई'13 वह यह मानते हैं कि किसी भी रचना पर कुछ भी अतिरिक्त आरोपित किया जाता है तो वह उसके मूल स्वरूप को बोझिल बनाता है और कुछ समय बाद ऐसे आरोपित प्रयोजन सामने आने लगते हैं। नई कहानी के दौर में रचनाकारों ने यथार्थ चित्रण और फैशनेबल संत्रास की अभिव्यक्ति के नाम पर यौन चित्रण और अपशब्दों को अपनी रचनाओं में आरोपित किया। यह सब तत्कालीन समय में आधुनिक, विशिष्ट और बोल्ड होने की कवायद थी। आधुनिकता और सेक्स के संदर्भ में वह लिखते है "सेक्स को लेकर यह जो तथाकथित 'आधुनिक' दृष्टि है वह भी ऐसी ही पश्चिम से मिली हुई दृष्टि है- एक रोगी समाज की रोगी दृष्टि जो दूसरे रोगी समाज पर आरोपित की जा रही है। उस रोग का नाम कुछ भी हो"14

पश्चिम आधुनिकता का पर्याय नहीं है। उत्तर औपनिवेशिक चिंतन ने इस तथ्य को सही साबित कर दिया है। आधुनिकता क्या है? इस प्रश्न पर अमृत राय लिखते हैं हम 'आधुनिकता पर विचार करते समय सजीव मनुष्य के संदर्भ में और देश-काल के संदर्भ में विचार न करके अमूर्त चिंतनसारणियों में जा फँसते हैं जो कालांतर में बस शब्दों का जंगल होकर रह जाती हैं। मनुष्य का आधार आवश्यक है क्योंकि सब कुछ उसी मनुष्य से है और उसी मनुष्य के लिए है, वही चिंतन कर रहा है और उसी के लिए चिंतन किया जा रहा है। कोई भी बहस हो, मनुष्य का आधार मिलते ही उसे अपनी ठोस धरती मिल जाती है। और देश-काल का आधार आवश्यक है क्योंकि मनुष्य इसी देश-काल में अपने विशिष्ट ढंग से रहता है, और उसका वह अपने विशिष्ट ढंग से रहना ही उसकी मनोरचना का भी विधायक और नियामक होता है।15

किसी भी विचार प्रणाली के संदर्भ में देशकाल बहुत जरूरी प्रश्न है हर जगह यह जुमला फिट नहीं किया जा सकता कि दुनिया बहुत छोटी हो गई है देश काल की सीमा में देखना विचार प्रणाली के साथ अन्याय है। यहाँ पर अमृत राय एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठाते है वह भौगोलिक दुनिया के साथ-साथ ऐतिहासिक दुनिया की बात करते हैं। वह लिखते हैं 'तो इसमें क्या शक कि भौगोलिक दूरियाँ बहुत कम हो गयी हैं, दुनिया बहुत छोटी हो गयी है। लेकिन यह भी याद रखने की जरूरत है कि दूरियाँ भौगोलिक ही नहीं ऐतिहासिक भी होती हैं, क्योंकि आदमी भूगोल में ही नहीं रहता इतिहास में भी रहता है। जभी तो हम यह विरोधाभास भी देखते हैं कि एक ओर आदमी चाँद पर पहुँच रहा है और दूसरी ओर इसी धरती पर एक देश और दूसरे देश के बीच की दूरियाँ बढ़ती जा रही हैं, यहाँ तक कि एक आदमी और दूसरे आदमी के बीच की दूरियाँ बढ़ती जा रही हैं।'16

भारत और यूरोप एक नहीं है। सांस्कृतिक आदान-प्रदान दो संस्कृतियों में तभी सम्भव होता है जब वह समान स्तर पर होती हैं। एक साम्राज्यवादी वर्चस्ववादी संस्कृति अपने से अन्य आर्थिक रूप से कमजोर संस्कृति को संस्कृति के रूप में नहीं देखती, वह उस समाज और संस्कृति को उपभोक्ता और बाजार की दृष्टि से देखती है। यह कैसा आश्चर्य है कि जो आधुनिकता भारतीयों के लिए एक मूल्य है वह पश्चिम साम्राज्यवादी शक्तियों के लिए एक ब्रांड मात्र। और जो या पश्चिमी संस्कृति से अलग अन्य आर्थिक रूप से कमजोर संस्कृति है इसका अतिशय दोहन और किसी ने नहीं उपनिवेशवाद के माध्यम से स्वयं पश्चिम ने किया है। इस संदर्भ में अमृत राय लिखते हैं 'दुर्भाग्यवश हमारे कुछ नये लोगों के पास यह ऐतिहासिक दृष्टि नहीं है। वे इसी को पूरी बात समझ बैठे हैं कि भौगोलिक दूरियाँ मिट गयी हैं और पश्चिम का नये से नया साहित्य और साहित्यिक आंदोलन की सूचना इतनी अधिक सुलभ हो गयी है। इससे उत्साहित होकर हमारा यह तथाकथित आर्वां गार्द ('अगला दस्ता', जो सचमुच पिछला दस्ता है क्योंकि उसे अपनी मिट्टी की जरा भी समझ नहीं है) हर रोज लंदन, पेरिस, न्यूयार्क या मेक्सिको का एक नया शिगूफा लेकर पहुँच जाता है, और जब वह यहाँ जड़ नहीं पकड़ता तो वह अपनी जनता को, उसके पिछड़ेपन को हजार गालियाँ सुनाकर, निरुत्साहित होते-होते एक दिन लिखना-पढ़ना छोड़ बैठता है- भैंस के आगे बीन बजाने से क्या फायदा!... जब कि सच पूछिए तो अगर उसे गाली ही देनी है तो खुद को देनी चाहिए, और अपनी उस कच्ची और नितान्त अनैतिहासिक समझ को जो अपने देश-काल को देखने से इन्कार करती है और समझती है कि जो भी, जैसा भी बिरवा जहाँ से भी लेकर आओ, यहाँ रोपा जा सकेगा, आधुनिकता के नाम पर और अपना ढोल पीटने के बूते पर ! इतना आसान खेल नहीं है।"17

आधुनिकता के साथ दूसरा शब्द जो तत्कालीन साहित्य में ध्वनित होता है वह है संत्रास। अमृत राय ने आधुनिक भावबोध की संज्ञा के अनेक लेखों में इस फैशनेबल संत्रास की कठोर आलोचना की है "जिसको देखो वही संत्रास की बातें कर रहा है लेकिन यह कोई नहीं बताता कि कैसा संत्रास, किस बात का संत्रास। यानी वही अरूप-अनाम ऊब के जैसा अरूप-अनाम संत्रास । उसको भी समझने और नाम देने की जरूरत है- यानी अगर जीवन और साहित्य के विकास की अगली राहें खोजनी है। पर वैसा करते ही फिर इस बात का डर है कि सामाजिक संदर्भों की बात करनी पड़ेगी और उसमें फिर 'आधुनिकता' की रक्षा न हो पायेगी'। 18

यह आधुनिक भावबोध के नाम पर जो उपक्रम साहित्य में चल रहा है यह एक प्रकार का मानसिक उपनिवेश ही है 'पिछले दिनों रचनाकार की सहज साहित्य-चेतना को कभी नये शिल्प के नाम पर और कभी आधुनिक भाव-बोध के नाम पर भटकाने का बड़ा विपुल आयोजन किया गया है और आज भी किया जा रहा है, उसने और जो कुछ अनिष्ट किया हो या न किया हो, इतना अनिष्ट तो निश्चय ही किया है कि बहुत से नये कहानी-कारों के मन में एक विचित्र सी ग्रंथि डाल दी है- कहीं मैं ऐसा कुछ तो नहीं लिख रहा हूँ जो बिलकुल अन-आधुनिक है ! कहीं मेरा शिल्प पुरातनपंथी तो नहीं है! लोग मेरी कहानी को बासी-तिवासी कहकर तो नहीं फेक देंगे।। नयी हवा को अपने फेफड़े में भर लूँ, नये भावबोध को पूरी तरह नं, लंदन-पैरिस-न्यूयार्क-मेक्सिको-तोकियो-ग्रिनिच विलेज में इस समय क्या लिखा अपना लूँ, sartre-कामू काफ्का-किकेंगार्द को पढ़ लूं, नये शिल्प को करायत्त कर जा रहा है इसको देख-समझ लूँ - तो लिखूं!19

राजनीतिक रूप से स्वतंत्रता के बाद भी पश्चिमी सभ्यता का इतना अधिक प्रभाव दुनिया छोटे होने का संकेत नहीं यह नव-उपनिवेशवाद के संकेत है। इस संदर्भ ने प्रभा खेतान लिखती हैं "वास्तव में भूमंडलीय मंच अपने-आपमें एक पश्चिमी मंच है। यह पश्चिमी सत्ता और नियंत्रण का ही व्यक्तिकरण है। यदि यहां किसी गैर-पश्चिमी व्यक्ति को कभी-कभार कुछ कहने-बोलने के लिए चुन भी लिया जाता है तो मात्र इस आधार पर कि वह पश्चिम के करीब है या पश्चिमी आदर्शों को बढ़ावा देता है या उनकी अच्छी नकल कर सकता है। जितनी भी गैर-पश्चिमी निर्मिति और कलाकृतियां हैं, वे पश्चिमी मानस को महज गुदगुदाती हैं। अतः भूमंडलीकरण के नाम पर वस्तुतः यह नव-पश्चिमीकरण है, जिसमें हम सबको रंगा जा रहा है।"20

अमृत राय का चिंतन इसलिए महत्वपूर्ण हो जाता है कि वह साहस के साथ वस्तु स्थिति का चित्रण करते हुए पश्चिमी आधुनिकता मात्र को मानक जीवन मूल्य नहीं स्वीकार करते। उनका भारतीय मन अपनी परम्परों के सहज विकास में आस्था रखता हैं।

**निष्कर्ष** - किसी भी विचार प्रणाली के एकांगी दृष्टिकोण पर अमृत राय असहमति व्यक्त करते हैं। यद्यपि उनकी आलोचनात्मक दृष्टि मार्क्सवादी है पर उनका चिंतन क्रांति और विद्रोह के खोखले नारे और अराजकता को स्वीकार नहीं करता। आधुनिक भाव बोध की रचना प्रक्रिया और उस पर पश्चिमी संस्कृति के वर्चस्व को वह अपनी आलोचना में रेखांकित करते हैं। नई कहानी में अतिरिक्त आरोपित बोल्डनेस उनको असहज करती है। वह रचनाकार के सामजिक परिवेश और उसकी लोक-दृष्टि को समाज का बड़ा मूल्य स्वीकार करते हैं। वह आदर्शवाद और यथार्थवाद दोनों की अति से असहमत होते हैं। उनका भारतीय मन साहित्य में सत्य को आदर्शवाद और यथार्थवाद के बीच में कहीं पाता है।

**संदर्भ ग्रंथ :-**

1. अमृत राय, आधुनिक भाव बोध की संज्ञा, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, 1987, पृ. सं 14
2. वहीं
3. डॉ सभापति मिश्र, डॉ लक्ष्मी सक्सेना, अस्तित्ववाद के प्रमुख विचारक, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 2002, पृ. सं 32
4. अमृत राय, आधुनिक भाव बोध की संज्ञा, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, 1987, पृ. सं 14
5. वहीं
6. वहीं, पृ. सं 22
7. अज्ञेय, त्रिशंकु, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली, पृ. सं 44-45
8. अमृत राय, आधुनिक भाव बोध की संज्ञा, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, 1987, पृ. सं 16
9. वहीं पृ. सं 74
10. वहीं पृ. सं 23
11. अमृत राय, नयी समीक्षा, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. सं 131
12. वहीं पृ. सं 136
13. अमृत राय, आधुनिक भाव बोध की संज्ञा, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, 1987, पृ. सं 73
14. वहीं पृ. सं 119
15. वहीं पृ. सं 82
16. वहीं पृ. सं 83
17. वहीं पृ. सं 84
18. वहीं पृ. सं 114
19. वहीं पृ. सं 109
20. प्रभा खेतान, भुमंडलीकरण : ब्रांड संस्कृति और राष्ट्र, समायिक प्रकाशन, पृ. सं 11